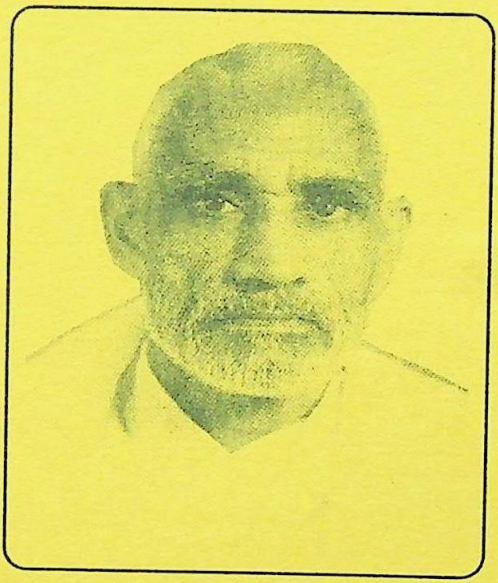
ॐ

स्वशक्ति-साधना

का

संक्षिप्त परिचय



महात्मा नारायणदास

स्वशक्ति-साधना का संक्षिप्त परिचय

(प्रश्नोत्तर में)

प्रश्न	
साधना क्या है ?	मानव-जीवन को सार्थक बनाने के लिये उसके सर्वांगीण विकास की एक व्यावहारिक आध्यात्मिक-युक्ति है।
मानव जीवन का लक्ष्य क्या है ?	मानव-जीवन का लक्ष्य है अपने पूरे स्वरूप को पहचान कर उससे प्रेम करना। इसी ध्येय को भगवान के चरणों में प्रेम करना भी कहते हैं।
पूरे स्वरूप से क्या अभिप्राय है ?	यदि जगत के मानवों का मानचित्र बनाया जावे, और उस मानचित्र में हमको सम्मिलित न किया जावे तो जगत का मानचित्र अधूरा होगा और जब हमको भी उसमें मिला लिया जावेगा तब ही जगत का मानचित्र पूर्ण होगा। इस प्रकार जब हम अपने को समस्त जगत में मिला देते हैं तभी हमारा रूप पूर्ण होता है अन्यथा हम 1/जगत ही रहेंगे। अतः पूरे स्वरूप से यही मतलब है कि हमारा अस्तित्व जगत के अस्तित्व से पृथक नहीं। यही जीवन का लक्ष्य है।
भगवान कहाँ रहते हैं ?	सब जगह यानी प्रत्येक प्राणी के अन्दर उनकी सत्ता विद्यमान है।
भगवान के चरणों में प्रेम करने से क्या बात व्यक्त होती है ?	चूँकि भगवान सब प्राणियों में हैं, इसलिए भगवान के चरणों में प्रेम करने से यही बात व्यक्त होती है कि हम प्राणी मात्र से प्रेम करें। जगत से प्रेम करना ही जगन्नाथ से यानी भगवान से प्रेम करना है। जिस लक्ष्य की प्राप्ति अपने स्वरूप को जानने से होती है उसी लक्ष्य की प्राप्ति भगवान के चरणों में प्रेम करने से होती है। बोलने में केवल दो सिद्धान्त पृथक-पृथक मालूम पड़ते हैं पर वस्तुतः व्यावहारिक

दृष्टि से दो सिद्धान्त नहीं, एक ही सिद्धान्त है।

प्रेम करना कहाँ से आरम्भ होता है ?

स्वयं अपने से, क्योंकि अपने से प्रेम करना स्वाभाविक है। साथ ही हम 1/जगत हैं और यह भाव जब हमारी बुद्धि में भली भाँति से बैठ जावेगा तब शनैः शनैः हम अन्य व्यक्तियों को अपना ही अंग समझने लगेंगे। वस्तुतः साधक का अभीष्ट लक्ष्य तो अपने पूरे स्वरूप के लिये ही कर्तव्यरत रहना है। अतः अपने से प्रेम करने से आरम्भ करके जब वह प्राणी मात्र से प्रेम करने लगेगा तब उसका अभीष्ट सिद्ध होगा।

अपने से प्रेम कैसे किया जाता है ?

अपने से प्रेम करने के लिये चार बातें आवश्यक हैं:-

1. शरीर और विचारों को स्वस्थ बनाना
2. इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना।
3. राग द्वेष से उत्पन्न होने वाले विकारों को सदैव दूर करते रहना।
4. स्वधर्म रूप उत्तम कर्तव्य-पालन करना।

वह कौन सी सर्वोत्तम विधि है जिससे अपने से प्रेम करने की चारों आवश्यक बातों का सहज ही अभ्यास किया जा सके ?

अपने से प्रेम करने की चारों आवश्यक बातों को सुगमता से अभ्यास करने की सर्वोत्तम विधि 'साधना' में बैठना है। तथा साधना के उपरान्त दैनिक जीवन को साधनामय बनाना है। 'साधना' में बैठना तथा साधनामय जीवन दैनिक ही व्यतीत करना आवश्यक है।

साधना में बैठने से क्या तात्पर्य है ?

सद्गुरू से दीक्षा लेते समय साधक अपनी दिव्य शक्ति की शरण में सदैव रहने का वचन देता है। तब सद्गुरू के सम्पर्क से एवं शक्ति के अनुग्रह से साधक अपने निर्माण करने वाली शक्ति का अनुभव करता है। शक्ति का अनुभव कर लेने के बाद ही साधना में बैठा जा सकता है। बैठने की अवधि में साधक को कुछ करना नहीं पड़ता। न तो अपनी तरफ से कुछ सोचता है और

न आने वाले विचार आदि को रोकता है। केवल दृष्टा या साक्षी बना रहता है। वह जो कुछ साधना में होता है उसकी गवाही मात्र देता है। इस प्रकार वह साक्षी में रहने के संस्कारों को पुष्टि करता है। चूँकि साक्षी में कर्तापन नहीं होता अतः उसमें राग द्वेष रहित काम करने का उसे अभ्यास होने लगता है। साथ ही इस रीति से शरीर और विचार दोनों ही स्वस्थ बनते जाते हैं। क्योंकि साधक, साधना से उठते ही शरीर में स्फूर्ति और चित्त में शांति अनुभव करता है।

प्रायः मानव दिनभर कुछ न कुछ सोचता रहता है, जिससे उसकी शक्ति क्षीण होती रहती है। किन्तु साधना में कुछ भी चिन्तन नहीं करना पड़ता, अतः शक्ति क्षीण तो होगी ही नहीं, साथ ही शक्ति को स्वयं अपनी अभिवृद्धि का अवसर मिल जाता है। जैसे कृषक जब तक बैलों से जोतने का काम लेता रहेगा उनकी शक्ति क्षीण होती रहेगी किंतु जैसे ही वह उन्हें हल के जुए से खोलेगा, वे ढील पाते ही काश्त चरने के लिए मुख डालने लगेंगे (चाहे काश्त कितनी ही कीमती क्यों न हो) और वे अपनी शक्ति की अभिवृद्धि करने लगेंगे। वैसे ही साधक, साधना में अन्य कार्यों से अपने को मुक्त करके जब बैठता है तो वह अपनी शक्ति को अभिवृद्धि करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है।

साधना के उपरांत दैनिक जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए ?

दैनिक जीवन में साधक को उठने वाली इच्छाओं की पूर्ति करना होती है। साधक को एक साथ क्रम-क्रम से चार तरह का अभिनय करना पड़ता है:-

1. साक्षी का 2. निर्देशक का
3. शरणागत निर्देशक का
4. काम के अंत में पुनः साक्षी बनने का।

पहला अभिनय साक्षी का कैसे किया जाता है ?

कोई भी कार्य करने के पहले हमारे मन में उस काम के करने की इच्छा उत्पन्न होती है जैसे हम 11 बजे कार्यालय को जाते हैं, जो 11 बजने से कुछ समय पूर्व ही कार्यालय जाने का भाव हमें आवेगा और हम कपड़े आदि पहनकर तैयार होकर कार्यालय जाने लगेंगे किंतु, साधक को एकदम नहीं जाना चाहिए उसे एक क्षण को रुककर यह सोचना चाहिए कि क्या उसे कार्यालय जाने की इच्छा उठ रही है ? ऐसा सोचने से वह अपनी उठी हुई इच्छा का साक्षी हो जावेगा। ऐसे ही साधक को अपनी समस्त इच्छाओं को कार्यान्वित करने से पूर्व उनका साक्षी हो जाना चाहिए। वस्तुतः साक्षी का प्रथक से अस्तित्व नहीं। निर्देशक यानि व्यक्ति का ''मैं पन'' ही साक्षी का अभिनय करने लगता है। इस प्रकार हमारे अचेतन मन पर साक्षी भाव के संस्कार पुष्ट होंगे। चूंकि साक्षी भाव ही राग द्वेष से रहित हो जाने की स्थिति है। अतः हम सहज ही राग द्वेष से रहित रहने के अभ्यासी होने लगेंगे।

निर्देशक के अभिनय से क्या तात्पर्य है ?

प्रायः व्यक्ति प्रत्येक कार्य अपने अहंकार से यानी ''मैं पन'' से करता है। अतः व्यक्ति के अहंकारी भाव को निर्देशक कहा जा सकता है। अब चूंकि साधक का निर्देशक साक्षी भाव में कुछ काम नहीं कर सकता इसलिए फिर से निर्देशक भाव में ही आ जाना चाहिए। जैसे साक्षी बनने से पहले साधक 11 बजे से कुछ समय पूर्व ही कपड़े पहनकर कार्यालय जाने लगा था, किंतु फिर साक्षी भाव में आने को वह क्षण भर को रुक गया था वैसे ही अब उसे पूर्व की भाँति निर्देशक के रूप में आकर कार्यालय जाना चाहिए। इस प्रकार अब उससे निर्देशक का अभिनय होगा।

शरणागत निर्देशक के अभिनय से क्या तात्पर्य है ?

निर्देशक का अभिनय करते ही साधक के मन में '' मैं कार्यालय जा रहा हूँ '' यह भाव आवेगा और ऐसा सोचते ही उसमें '' मैं पन '' फिर आ जावेगा। इस ''मैं पन'' के भाव को प्रभावहीन करने की दृष्टि से साधक को एक क्षण के लिए और भी कार्यालय जाने से पूर्व रुक जाना चाहिए। और यह मन ही मन स्मरण कर लेना चाहिए कि ''चूंकि मैं तो भगवती शक्ति की शरणागत हूँ, क्योंकि दीक्षा के समय मैं भगवती की शरण में रहने का वचन दे चुका हूँ। अतः अब मेरा निजी कार्य तो कुछ है ही नहीं सब कार्य भगवती का है मैं तो केवल भगवती का सेवक हूँ। अतः मैं सेवक की भाँति स्वामी के लिये कार्यालय में कार्य करने जा रहा हूँ'' । ऐसा सोचने से साधक से अब शरणागत निर्देशक का अभिनय होगा। इस भाव से अब उसे कार्यालय को जाना चाहिये और काम करना चाहिए। हाँ यह ध्यान रहे कि भगवंती शक्ति जिसका साधक ने अनुभव किया है वह पूजनीय है, आदरणीय है और माता के तुल्य है। उसके लिए ही हम हाथ में लिये कार्य को पूरा कर रहे हैं। पूजनीय व्यक्ति के सामने कार्य सावधानी से होगा, समझदारी से होगा और ''मैं पन'' से रहित होगा। उसमें ''मैं पन'' नहीं आवेगा, क्योंकि वह कार्य भगवती के लिए होगा।

थोड़े अभ्यास के उपरांत साधक को अनुभव होने लगेगा कि सेवक के रूप में उसके भरसक प्रयत्न करने पर यदि कोई समस्या हल नहीं होती तो अनायास ही उसे ऐसा स्फुरण हो जावेगा यानी पूर्व अर्जित अचेतन मन पर पड़े वे संस्कार जिन्होंने उसकी पिछली समस्याओं को सुलझाया है, उभर आवेंगे जिससे उसकी

समस्या पूर्ति का उसे मार्ग सूझने लगेगा और उसे शांति अनुभव होगी। ठीक उसी तरह से जैसे ही सेवक को स्वामी का काम पूरा करने में जब अड़चन अनुभव होती है तब स्वामी उसे मार्ग दिखा देता है, और सेवक को काम पूरा करने में फिर कठनाई नहीं रहती, उसकी व्याकुलता मिट जाती है, वह शांति अनुभव करता है।

शरणागत निर्देशक का पुनः साक्षी भाव में आने का क्या तात्पर्य है ?

शरणागत निर्देशक का पुनः साक्षी भाव में आने का काम तब होता है जबकि साधक, शरणागत निर्देशक का स्वामी के सेवक की भाँति कार्य को समाप्त कर लेता है यानी 5 बजे कार्यालय का काम पूर्ण करके अब फिर वह घर को वापिस आता है। अतः कार्यालय से जैसे ही साधक घर को चलने लगे वैसे ही एक क्षण को रुककर विचार कर ले कि क्या उसे यह विदित है कि उसके द्वारा भगवती का कार्य कार्यालय में पूरा हो गया है ? क्या उसको इसकी जानकारी है? बस इतना कहते ही साधक पुनः साक्षी भाव में आ जावेगा। इस स्थिति में क्षण भर रहकर पुनः शरणागत निर्देशक के रूप में भगवती के लिये घर के कामों को पूर्ण करने पर आवे। यही शरणागत निर्देशक का पुनः साक्षी भाव में आने का अभिप्राय है।

इस प्रकार प्रत्येक कार्य साक्षी भाव से आरम्भ करके साधक निर्देशक के रूप में इच्छानुसार कार्य करने को उद्यत होता है और फिर शरणागत का भाव लाकर सेवक की भाँति स्वामी का कार्य करता है और कार्य के अंत में साक्षी भाव में पुनः आ जाता है, जिससे ''मैं पन'' प्रभावहीन होने लगता है और साधक को बार-बार साक्षी भाव में रहने का अभ्यास होने लगता है इस रीति से साधक राग द्वेष से रहित

साधक अपने से भली प्रकार प्रेम करने के उपरांत अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर कैसे बढ़े? यानी जगत से प्रेम कैसे करे ?

उत्तम कर्तव्य पालन करते हुये आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। क्योंकि साक्षी भाव में साधक कर्म का दृष्टि मात्र बना रहता है, कर्म का कर्ता नहीं। जो कर्म का कर्ता ही अपने को नहीं मानता उस पर कर्म के परिणाम का भी प्रभाव न होगा जिससे उसके मस्तिष्क का सन्तुलन बना रहेगा। फलतः कर्तव्य-पालन उत्तम होगा और उसका जीवन राग-द्वेष से रहित होगा।

जब साधक अपने से प्रेम करने का अभ्यासी होने लगेगा यानी अपने शरीर को स्वस्थ रख, सदाचार युक्त जीवन से कर्तव्य पालन करने लगेगा तब सहज ही उसे आगे बढ़ने की इच्छा प्रबल होने लगेगी। फलतः वह स्वाभाविक रूप से ही अपने पारिवारिक निजी क्षेत्र की सीमा से बाहरी लोगों की सहायता ऐसे करने लगेगा मानो कि वह अपनी ही सहायता कर रहा है। और वह स्थिति उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहेगी जब तक कि पूर्णता को न प्राप्त हो जावे अर्थात वह मृत्यु पर्यन्त अपनी सीमा के अन्तर्गत यथा शक्ति जगत का हितेषी बना हुआ निजी क्षेत्र को भी सम्हाले रहेगा। जो भी साधन उपलब्ध होंगे उनसे वह अपने बढ़े हुए निजी क्षेत्र की सेवा करता रहेगा। यदि संयोगवश वह वृद्धावस्था में जगहितार्थ सभी आवश्यक साधनों के उपलब्ध करने में असमर्थ है तो कम से कम वह मानसिक रूप से जगत के हित की भावना तो व्यक्त करता ही रह सकता है। जैसे कि :-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भग्भवेत

सब सुखी रहें, सब स्वस्थ रहें,
सब ही सुख के सम भागी हों।
सब ही दुःख से, नित मुक्त रहें,
सब ही सत् के अनुगामी हों।

इस प्रकार वह जनहित की जगत में व्याप्त विचार धारा को अधिक शक्ति-शाली बनाने में अपना पूरा योग दे सकता है और अपने लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

क्या अपने निर्माण करने वाली शक्ति के अनुभव करने की दीक्षा लेना पर्याप्त है ?

यद्यपि दिव्य शक्ति का अनुभव दिव्य-शक्ति-सम्पन्न सद्गुरू के सम्पर्क में आने से शीघ्र हो जाता है किन्तु फिर भी दीक्षा देना मात्र पर्याप्त नहीं। दीक्षित साधक को उससे लाभ उठाते रहना अत्यन्त आवश्यक है। तब कहीं विचारों के आदान प्रदान के फलस्वरूप कालान्तर में शक्ति का रहस्य हृदयंगम हो सकेगा। जितना अधिक सत्संग होगा उतनी ही अधिक प्रगति होगी।

यह कैसे जाना जाय कि अमुक व्यक्ति दिव्य शक्ति सम्पन्न सद्गुरू है?

दिव्य-शक्ति-सम्पन्न सद्गुरू वह है जिसमें कम से कम निम्नलिखित तीन विशेषताऐं अवश्य हों :-

1. जिज्ञासु की समस्त जिज्ञासाओं को भली प्रकार समाधान कर उसे अपना श्रद्धालु भक्त बना लेने की शक्ति।

2.श्रद्धालु व्यक्ति (जो साधना में बैठने को अत्यन्त उत्सुक हो) यदि सद्गुरू को प्रणामादि करे तो गुरू के चरण स्पर्श करते ही व्यक्ति को तुरन्त ही शक्ति का वेग उसके शरीर में अनुभव होने लगे, ऐसी सामर्थ्य।

3. श्रद्धालु व्यक्ति को दीक्षा देते समय जैसे ही सद्गुरू मन्त्रोच्चारण करे, वैसे ही व्यक्ति के शरीर में वे चिन्ह प्रकट होने लगें जिनसे उसे शक्ति की प्रत्यक्ष अनुभूति हो जावे और दीक्षा के उपरान्त भी व्यक्ति को शक्ति का प्रति-क्षण अनुभव होता रहे, भले ही शक्ति के स्पन्दन का रूप अत्यन्त ही सूक्ष्म क्यों न हो, ऐसी क्षमता।

ऊँ शम्

प्रकाशक:
नारायण आध्यात्मिक ट्रष्ट
सरकूलर रोड शिवपुरी
सम्पर्क: 9584839311

तृतीय मुद्रण गुरुपूर्णिमा 2015
मूल्य: 10 रु.

गुरूपूर्णिमा 2015 के शुभ अवसर पर श्री राजीव दुबे द्वारा
नारायण आध्यात्मिक ट्रष्ट शिवपुरी को सप्रेम भेंट

मुद्रक: मुकेश प्रिंटिंग प्रेस, निचला बाजार, शिवपुरी ☎ 232104